मेरी यादों की क्रिसमस

जोएल गिल

मेरा दस साल का बेटा कागज़, पेन लेकर लिस्ट बनाने बैठा है कि क्रिसमस पर उसको क्या-क्या खरीदना है। उसे अपने स्कूल के लिए क्रिसमस ट्री बनाना है। आजकल स्कूलों में क्रिसमस उत्सव होते हैं। शहरों में बड़ी-बड़ी इमारतों में शाम को कार्यक्रम किए जाते हैं। दुकानें अलग-अलग स्वाद के छोटे-बड़े केक से भरी रहती हैं। सड़कों-चौराहों पर क्रिसमस फादर के मास्क बिकते हैं। बड़ी कम्पनियाँ तो किसी व्यक्ति को क्रिसमस फादर बनाकर रथ में बैठाकर शहर का चक्कर लगवाती हैं। गिरजों में होड़ लगती है कि कौन-सा गिरजा सबसे ज़्यादा चमचमाएगा। मेरा बेटा अपनी लिस्ट की चीज़ें गिनवाए जा रहा था।

मुझे याद है जब मैं दस साल का था तो हमारा क्रिसमस (जिसे हम "बड़ा दिन" कहते थे) कुछ अलग होता था। दिसम्बर आते-आते दीवारों पर सफेदी करवाने का सिलसिला शुरू हो जाता था। पुरानी दिल्ली की हमारी बस्ती में कुल तेरह घर हुआ करते थे। इनमें से दस परिवार इसाई थे। सारे परिवार अपने-अपने घरों की सफेदी का दिन मिलकर तय करते थे। ऐसा शायद इसलिए भी ज़रूरी था क्योंकि जिस घर में सफेदी होती वह अपना ज़्यादातर समान दूसरे घरों में सम्भालकर रख देते। वैसे भी बड़ा दिन या किसी भी त्यौहार का मज़ा तो मिल-जुलकर मनाने में ही आता है।

बड़े दिन से चार-पाँच दिन पहले बस्ती चमचमाने लगती। हर घर के सामने एक बड़ा-सा लाल रंग का सितारा चमकता। यह सितारा यीशु के जन्म का प्रतीक है। बाइबल के अनुसार पूर्व दिशा से तीन विद्वान आकाश में चमकते एक बड़े से सितारे का पीछा करते यीशु के जन्मस्थान येरूशलम तक पहुँचे थे। यही सितारा हर घर की रौनक बढ़ा देता था। हमारे घर भी एक सितारा लटकता रहता। मेरे अपने हाथ का बना सितारा।

मेरे और मेरे बड़े भाई के कपड़े दर्ज़ी के पास सिलने जाते थे। यहाँ तक कि हमारे जूते भी मोची के पास बनने के लिए दिए जाते। उस वक्त रेडीमेड का ज़माना नहीं था।

उन दिनों ठण्ड भी कड़ाके की पड़ती थी। रात होते-होते जब घर की औरतें और आदमी मिलकर पकवान बनाते, तो पूरी बस्ती पकवानों की खुशबू से महकने लगती। सूजी की गुझ़िया, गोल छेद वाला दोनक, एक युरोपियन कुकी, बाजरे की टिकियाँ, शक्कर पारे, नमक पारे और भी जाने क्या-क्या। उन दिनों इक्का-दुक्का लोग ही केक बनवाते थे।

बस्ती की छोटी-छोटी लड़कियाँ घर-घर घूमकर पकवान बनाने में मदद करतीं। हालाँकि उनके हिस्से केवल गुझ़िया कुतरने और नमक पारे काटने जैसे काम ही आते। मुझे भी "चक्र वाले चम्मच" से गुझ़ियों को डिज़ाइनदार काटने में बड़ा मज़ा आता। पकवान बनाते-बनाते बड़े दिन के गीत गाना एक रिवाज़ [illegible] गीत गाया जा रहा होता था।

वैसे घर-घर जाकर भजन सुनाने वाली मण्डलियाँ अलग हुआ करती थीं। दरअसल बड़े दिन पर हाथों में हारमोनियम और ढोलक लिए भजन मण्डलियाँ घर-घर जाकर रतजगा करतीं। अपने गीतों के द्वारा वे बड़े दिन के आने का संदेश पहुँचातीं। आजकल उनकी जगह क्वायर समूहों (गाने वालों की प्रशिक्षित मण्डली) ने ले ली है। गिटार और बौंगो (हाथ से बजाया जाने वाला एक प्रकार का ड्रम) इन समूहों की शान होते हैं।

मुझे भजन मण्डली के गाने विशेष रूप से भाते। दरअसल, मेरे बाबूजी पंजाबी मूल के ईसाई थे और मामा यानी मेरी माँ बाहरी दिल्ली के एक गाँव से थीं। मेरे मामू (माँ के भाई) हमेशा बड़े दिन से दो या तीन दिन पहले आधी रात के समय अपनी मण्डली के साथ एक टैम्पों में बैठकर ज़रूर आते। उनका आना आमतौर पर रात 12 बजे के बाद ही होता। उनके आते ही हमारी बस्ती [illegible] गानों से गूँजने [illegible] आया है यीशू आया है" और "चमका सितारा आधी रात" जैसे गीतों के जोश, मज़े से गर्मा जातीं।

उनके पहुँचते ही बच्चे और बड़े मण्डली के इर्द-गिर्द खड़े हो जाते और गाने में उनका साथ देते। किस घर से चाय बनकर आती और किस घर से गुझ़िया इसका पता ही नहीं चलता। खड़ी भाषा में गाए वे गीत आज भी मेरे कानों में गूँज उठते हैं। बीच बस्ती में जमी मण्डली छोड़कर मामू गाँव से लाए बाजरे का आटा मामा को देने घर के अन्दर आ जाते। यही आटा बाजरे की टिक्कियाँ बनाने के काम आता। बाबूजी उन्हें बड़े दिन की मुबारकबाद देते और एक कागज़ की बड़ी थैली में घर में बने पकवान पकड़ा देते।

चित्रः जोएल गिल

मोटे-मोटे कम्बलों में लिपटी मण्डली अपने गानों का सिलसिला जारी रखती। चाय और गुझ़िया के बाद एक-दूसरे को बधाई देने का दौर चल निकलता। फिर बड़े दिन की प्रार्थना की जाती। अन्त में बस्ती वाले मण्डली को अपनी-अपनी सामर्थ्य के हिसाब से कुछ रुपए भेंट करते। चन्दे में मिले रुपयों से मण्डली अपने गिरजे की सजावट करती थी।

जाते-जाते मामू हम दोनों भाइयों के हाथ में एक-एक चवन्नी थमा जाते। यह चवन्नी हमारा बड़े दिन का उपहार होता।

जल्द ही यह मण्डली अपने टैम्पो में बैठकर किसी दूसरी इसाई बस्ती की ओर कूच कर जाती। और मैं अपनी रज़ाई में घुसकर बड़े दिन पर होने वाले मेले में उस चवन्नी को खर्चने के मंसूबे बाँधने लगता।

मेरे बेटे की लिस्ट पूरी हो चुकी थी। उसमें गुझ़ियों और बाजरे की टिक्कियों का कोई ज़िक्र नहीं था। पहले स्थान पर खेलने वाला गुड्डा और दूसरे स्थान पर आई-पॉड था।